इस स्थिति में हम बाकायदा शिकायत कर सकते थे। कुछ उधर के लोगों को हम अपने पक्ष में मोड़ सकते थे। इसीलिए तो अपने ही नाम के लिए न अड़ने की सलाह मैंने आपको दी थी। इसीलिए समझौता भी जरूरी था। लेकिन आपने मेरी बात नहीं मानी और अपनी ही जिद पर अड़े रहे। इसमें वीरता और बहादुरी नहीं, मूर्खता ही दिखाई देती है। काँग्रेस आपके हाथ से निकल गयी है, यही कहना पड़ेगा।''

मुंजे को लगा कि उन पर बहुत बड़ा अन्याय हुआ है। बलवन्तराव के प्रति अत्यधिक आदरभाव होने के कारण ही उन्हें चुप रहना पड़ा।

लेकिन बलवन्तराव की बातों में भी दम था। काँग्रेस-आयोजन नागपुर के बजाय सूरत में करने का निर्णय अखिल भारतीय काँग्रेस समिति ने ले लिया।

सूरत की स्वागत समिति में गरमपन्थी मुट्ठी भर ही तो थे। फिर भी उन्होंने पूरी जीवटता से अपना पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया। अब वे तिलक के नाम के आग्रही नहीं रह गये थे। लेकिन सरकार ने लाला लाजपतराय को हाल ही में मंडाले से रिहा कर दिया था। इससे समूचे देश में हर्षोल्लास भरी उमंग का वातावरण बन गया था। लोकमान्य तिलक के अनुरोध पर गरमपन्थी प्रतिनिधि इस लहर पर सवार हुए थे। अब वे लाला जी को अध्यक्ष बनाने की माँग करने लगे। उन्हें शान्त करना मुश्किल था। और यह कठिन समस्या हल करने के लिए ही फिरोजशाह मेहता ने गोखले को सूरत भेजा था।

गोखले ने बुजुर्गियत भरी हँसी के साथ कहा, ''लाजपतराय हम सभी के लिए आदरणीय हैं। उन्होंने देश के लिए अत्यन्त धीरज के साथ कष्ट सहे हैं। इसलिए इस काँग्रेस में लाला जी की सीमाबन्दी के विरुद्ध कड़ा निषेध व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पास किया जाना चाहिए। आप सोच सकते हैं कि अध्यक्ष पद पर आसीन होकर लाला जी इस प्रस्ताव पर होनेवाली चर्चा का सूत्र-चालन भला कैसे कर पाएँगे! उनके अध्यक्ष-काल में इस आशय का प्रस्ताव यदि पास हुआ तो लालाजी के आत्म-प्रचार की पूँजी बनाकर ऐंग्लो इण्डियन अखबार उल्टा-सीधा खूब छापेंगे। इसके अलावा हम चाहते हैं कि अध्यक्षीय भाषण में भी इस सीमाबन्दी की कड़ी भर्त्सना की जानी चाहिए। खुद लालाजी भला ऐसा कर सकेंगे?''

गरमपन्थियों के पास इस युक्तिवाद का जवाब तैयार था, ''सरकार की निगाहों में लाला जी के अप्रिय होने के बावजूद उन्हें अध्यक्ष बनाना निषेध-प्रस्ताव पास करने जैसा ही है। अतएव एक और निषेध प्रस्ताव अलग से पास हो या न हो, कोई विशेष फर्क नहीं पड़ेगा।''

अब गोखले ने अपना रवैया बदल दिया, ''क्या हमें अपनी औकात देखकर

नहीं चलना चाहिए? यदि भाईचारे से काम होता हो तो किसी को व्यर्थ ही ललकारने से भला क्या फायदा? मौजूदा हालत में लाला जी को अध्यक्ष बनाना यानी सरकार को उकसाना होगा। और तब सरकार हमारी बात कतई नहीं सुनेगी बल्कि अपनी समूची ताकत लगाकर सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचल डालेगी।''

''इसके विकल्प में आप चाहते हैं कि हम खुद ही अपना आन्दोलन खत्म कर दें? हमें तो यह रास नहीं आता। अधिकारों को लड़े बिना वे हमें प्राप्त नहीं होते। इतिहास के पन्ने भी इसी तथ्य की गवाही देते हैं, इंग्लैण्ड का इतिहास भी इसका अपवाद नहीं है।'' एक युवा प्रतिनिधि ने गोखले के युक्तिवाद का प्रतिवाद किया।

इसी बीच दूसरा प्रतिनिधि तैश में आकर बोला, ''काँग्रेस यदि जनता का प्रतिनिधित्व करती है तो क्या जनता के जज्बातों को उसे ध्यान में नहीं रखना चाहिए? लोगों ने जगह-जगह से सैकड़ों तार भेजकर लालाजी को अध्यक्ष बनाने की माँग की है।''

इस पर एक नरमपन्थी नेता ने फिकरा कसा, ''तारों और पत्रों की वर्षा करवाने की तिलक की तरकीब हमें पता है। पाँच सौ रुपये खर्च करो तो किसी भी समय ऐसी वर्षा हो सकती है।''

यह सुनते ही गरमपन्थी उखड़ गये। उनमें से एक झल्ला पड़ा, ''और अखिल भारतीय काँग्रेस समिति में बहुमत प्राप्त करने के फिरोजशाह मेहता के तरीके जायज होते हैं! क्यों?''

इस विषय पर काफी कहा-सुनी होती रही, चर्चा भी हुई। गुस्से में न आकर, ठण्डे दिमाग से तर्क करने में माहिर गोखले भी बेचैन हो उठे। खीजने लगे।

अन्ततः नरमपन्थियों की ओर से अम्बालाल साकरलाल मैदान में आये और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''अखिल भारतीय काँग्रेस समिति हमारे कब्जे में है। लाजपतराय के नाम की आपकी सिफारिश कतई स्वीकार नहीं की जाएगी, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। इसलिए उनके नाम की सिफारिश कर उन्हें मजाक का विषय क्यों बनाते हैं आप लोग?''

फिर उन्हीं में से एक आदमी ने डॉ. रासबिहारी घोष के नाम की सिफारिश की और उनके नाम का प्रस्ताव पास भी हुआ।

उसके बाद सभागृह से बाहर निकलकर गरमपन्थी प्रतिनिधियों ने कहा, ''यहाँ इस प्रस्ताव को पारित करवाने में कोई विशेष तकलीफ नहीं हुई लेकिन खुले सत्र में भी इतनी ही आसानी से यह काम हो जाएगा ऐसा मत समझें। वहाँ इस प्रस्ताव का हम डटकर विरोध करेंगे और यह मत भूलिए कि वहाँ हमारे भी काफी लोग मौजूद होंगे।''

''आप भी यह मत भूलिए कि आपकी दादागिरी का हम भी मुँहतोड़ जवाब देंगे।'' कहकर अम्बालाल साकरलाल फुर्ती से बाहर आ गये। भावावेग के कारण उनका थुलथुला बदन काँप रहा था।

काँग्रेस-अधिवेशन से आठ दिन पहले बलवन्तराव की ओर से दादासाहब खापर्डे सूरत पहुँच गये थे। उनके साथ डॉ. मुंजे, दाजीसाहब तुलजापुरकर, गंगाधरराव देशपाण्डे आदि गरमपन्थी युवा सहयोगी भी थे।

बलवन्तराव ने उन्हें संयमित रहने की हिदायत दी थी। हँसी-हँसी में उन्होंने डॉ. मुंजे को सुझाव दिया था कि हाथ में लठ लेकर घूमने की कोई जरूरत नहीं।

उन्होंने दादासाहब से कहा, ''आपको गुजराती आती है, इसलिए आप जगह-जगह जन सभाएँ आयोजित कर लोगों को प्रबोधित कीजिए। अभी गुजराती जनता जागरूक नहीं हुई है। इसके अलावा मेहता खेमे के लोग हमारे विरुद्ध उन्हें जरूर बहकाएँगे। अतएव लोगों को यह समझाना होगा कि 'हम कोई शैतान नहीं, बल्कि देश के रक्षक हैं।' हमारे बारे में उन्हें आश्वस्त करना होगा।''

फिर थोड़ा-सा ठिठककर उन्होंने कहा, ''और हाँ, अपने लोगों को रहने के लिए एक महीने के हिसाब से कोई अच्छी-सी, उपयुक्त जगह दिलाने की दृष्टि से मैंने एक दोस्त से बात कर रखी है। उनसे मिलकर बात पक्की कर लीजिए। जगह पूरी तरह से अपने कब्जे में होनी चाहिए, क्योंकि काँग्रेस कैम्प मेहता खेमे के हाथ में होगा। हम यदि वहाँ रुकते हैं तो वे लोग हमारे रास्ते में रोड़े अटकाने का पूरा प्रयास करेंगे। बल्कि ऐन वक्त पर यदि हम किसी जगह की तलाश करने लगें तो हमें वह न मिलने देने की वे भरसक कोशिश करेंगे। आखिरकार सूरत तो मेहता का गढ़ है। और वहाँ जाकर हमें मेहता से बहस करनी है।''

इन हिदायतों के अनुसार दादासाहब ने घी-काँटावाडी को अन्तिम रूप से अपने कब्जे में ले लिया और वहाँ गरमपन्थी सदस्यों के रहने का पूरा बन्दोबस्त कर दिया। प्रतिदिन शाम के वक्त वे बालाजी-पहाड़ी पर एक मैदान में आम सभा को सम्बोधित करने लगे और अपने वक्तृत्व एवं चुटीली भाषा से गुजराती श्रोताओं को अपने प्रभाव में लेने लगे।

उनके विरोध में स्वागत-समिति के अध्यक्ष मालवी, अम्बालाल साकरलाल, अलीमुहम्मद भीमजी आदि लोग थे। वे गरमपन्थियों के खिलाफ लोगों को बहकाने का प्रयास कर रहे थे। इस विवाद को मराठी विरुद्ध गुजराती रंग में रँगने की भी उनकी कोशिश थी। अपने प्रयासों में उन्हें किसी हद तक सफलता भले ही मिली हो, लेकिन दादासाहब को शह देना या उनकी सभाओं में हल्ला-गुल्ला करने और भगदड़ मचाने

में उन्हें सफलता नहीं मिली। कुल मिलाकर सार्वजनिक सभाओं में नरमपन्थियों की ताकत अक्सर जवाब दे जाती थी।

सुअक्कड़ सूरत शहर हड़बड़ाकर जग गया था। इस शहर में एक अनोखी उथल-पुथल हो रही थी। वे स्वेच्छापूर्वक सभाओं में जाने लगे थे। काँग्रेस को लेकर आपस में चर्चा करने लगे थे। युवकों के दिमाग पर एक नया फितूर सवार हो गया था। सभी की उत्सुकता चरम सीमा पर थी।

22 दिसम्बर को स्टेशन से शहर की ओर जानेवाली मुख्य सड़क पर मानो युवकों के मेले लग रहे थे। उन्होंने जगह-जगह बन्दनवारों से सजे प्रवेशद्वार और बोर्ड लगा रखे थे। घर-घर जाकर लोगों को अपने-अपने घरों पर पताकाएँ लगाने का अनुरोध उन्होंने किया। लोकमान्य तिलक के स्वागत की जोरदार तैयारी वे कर रहे थे। इस मामले में स्वागत-समिति का रवैया बिलकुल ही उदासीन था। अतएव गरमपन्थियों के प्रभाव में आये युवकों ने स्वयंस्फूर्ति से यह अभियान चलाया था। वे इस कदर उत्साहित थे कि उन्होंने स्वागत के लिए घुड़सवारों का एक दल भी बना लिया।

23 दिसम्बर को गाड़ी के स्टेशन पर आते ही इन युवकों ने लोकमान्य तिलक को पुष्पमालाओं से लाद दिया। उनका शानदार, भव्य जुलूस निकाला। इस जुलूस में सबसे आगे घुड़सवार, उनके पीछे लोकमान्य तिलक की बग्घी और उनके पीछे गरमपन्थी उत्साही युवकों का काफिला था। 'वन्दे मातरम्', 'लोकमान्य तिलक महाराज की जय', 'जय स्वदेशी' आदि नारों से आसमान गूँज रहा था।

सड़क के दोनों ओर लोगों की भीड़ थी। घरों के छतों-छज्जों पर भी लोग खड़े थे। महिलाएँ भी घूँघट की ओट से जुलूस का यह नजारा देख रही थीं। जगह-जगह जुलूस पर पुष्पवृष्टि की जा रही थी। यदा-कदा तिलक जी को बीच में ही रोककर उन्हें फूल-मालाएँ पहनायी जा रही थीं।

लोगों में उत्साह जगाने, शानदार, अतिभव्य जुलूस निकालने आदि में गरमपन्थी युवक माहिर थे।

मंजिल तक पहुँचने पर लोकमान्य तिलक ने युवकों की सराहना करते हुए कहा, "आप लोगों ने बड़ी मेहनत की है। कल लाला जी आ रहे हैं। उनका स्वागत तो इससे भी शानदार होना चाहिए।"

दूसरे दिन ऐसा ही हुआ। लालाजी की बग्घी के घोड़े हटाकर युवक खुद उसमें जुट गये। फूल-मालाओं और गुलदस्तों का ढेर लग गया। लाला जी सड़क के दोनों ओर खड़े लोगों का दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करते जा रहे थे।

स्वागत के मामले में गरमपन्थियों से भी दो कदम आगे बढ़ने का निश्चय स्वागत समिति ने किया। अतएव फिरोजशाह मेहता के स्वागत में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। बड़े ही जोरदार तरीके से उनका स्वागत उन्होंने किया। लेकिन भीड़ जुटाने, लोगों में उत्साह जगाने का जादू नरमपन्थियों के पास नहीं था। इसीलिए हद दर्जे के प्रयत्नों के बावजूद जुलूस जानदार नहीं हो पाया। और इस एक ही प्रयास से वे लोग इतने थक गये कि काँग्रेस के नियोजित अध्यक्ष रासबिहारी घोष का स्वागत अपेक्षया फीका रहा।

नेताओं के आगमन के बाद आम सभा, निजी बैठकों आदि में जोर आ गया और सरगर्मियाँ बढ़ गयीं। उत्कण्ठा चरम सीमा पर पहुँच गयी।

घीकाँटावाड़ी में गरमपन्थी खेमे में जोरदार बहस चल रही थी। महाराष्ट्र और बंगाल के युवकों का कहना था कि, ''अब समझौता नहीं होगा। रासबिहारी घोष को हम अध्यक्ष नहीं बनने देंगे। बहिष्कार का प्रस्ताव बिना-शर्त पारित किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं होता है तो हम काँग्रेस नहीं होने देंगे। अन्ततः काँग्रेस से अलग होकर हमें अपनी अलग पार्टी बनानी पड़ेगी। जो संस्था राष्ट्र-कार्य न कर सकती हो, बल्कि राष्ट्र-कार्य में बाधाएँ उत्पन्न करती हो, उस संस्था को पनपने देने से भला क्या फायदा! एकजुट बनाये रखने के लिए हम आत्महत्या नहीं कर सकते, कतई नहीं।''

अरविन्द घोष इन युवकों के अगुआ थे। उन्होंने अत्यन्त प्रभावी तरीके से बंगाल की व्यथा-कथा सुनायी। बँटवारे का इतिहास सुनाया। हिन्दू-मुसलमानों में दुश्मनी पैदा करने के ब्रिटिशों की बदनीयती के मन्सूबों का उन्होंने पर्दाफाश किया। उन्होंने कहा, ''बंगाल के युवक अब जाग गये हैं। केवल बहिष्कार या कानूनी आन्दोलन से वे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। आपने तो पढ़ा ही होगा कि पिछले दिनों ढाका के कलेक्टर मिस्टर ॲलन को गोली से उड़ाने का प्रयास किया गया था। इसी से आपको बंगाली युवकों की उत्तेजना का पता चल गया होगा।''

लोकमान्य तिलक ने उन्हें और अधिक स्पष्ट नहीं बोलने दिया, क्योंकि बैठक निजी हो तो भी भेदिये तो सब जगह होते ही हैं। उन्हें अपने अनुभवों से मालूम था कि अति गोपनीय बातें भी लोगों को पता चल जाती हैं। उन्होंने बड़ी ही आत्मीयता के साथ कहा, ''मैं जानता हूँ कि युवकों में कितनी अधिक बेचैनी है। मेरे मन में भी उतनी ही उथल-पुथल है। लेकिन मेरा अनुभव कुछ अधिक है। इसी के आधार पर मैं उन्हें सलाह दे रहा हूँ कि अपनी ताकत को वे गलत आँक रहे हैं। वह उतनी अधिक नहीं है, जितना कि वे सोच रहे हैं। इसलिए उन्हें जल्दबाजी में कोई काम नहीं करना चाहिए। यह देश-हित में नहीं होगा, बल्कि इससे हानि ही होगी। इसके

बावजूद यदि कोई ऐसा दुस्साहस करना चाहे तो काँग्रेस या अन्य कोई भी संस्था उन्हें ऐसा करने से नहीं रोक सकेगी। अतएव काँग्रेस-विभाजन की कोई जरूरत नहीं है। इस संस्था को बड़ी मुश्किल से बनाया और अब तक सींचा गया है। देश के अनेक बड़े-बड़े नेताओं ने उसे मजबूत बनाने में योगदान किया है। इसमें सभी तरह के लोग शामिल हैं। इसलिए उससे अलग होने का विचार हमें छोड़ देना चाहिए। बल्कि इन सब लोगों को कदम-दो-कदम आगे ले जाने का ही प्रयास हमें करना चाहिए। इस साल भले ही हम वह न कर पाये हों, अगले साल हम अवश्य करेंगे। लेकिन आन्दोलन के जरिये जनजागृति का हमारा कार्य रुकना नहीं चाहिए।''

मुंजे ने तुनककर कहा, ''ये नरमपन्थी वास्तव में समझौता करना ही नहीं चाहते। वे काँग्रेस को दो कदम पीछे ले जाना चाहते हैं। क्या उनके साथ पीछे हटने के लिए हम तैयार हैं?''

लोकमान्य तिलक ने कुछ उखड़े-उखड़े से अन्दाज में कहा, ''यदि नरमपन्थी भी ऐसी ही जिद करते हैं तो स्वतन्त्र राष्ट्रीय पार्टी स्थापित करने के लिए मैं तैयार हूँ, लेकिन ऐसा करने से पहले समझौते के सभी सम्भव प्रयास हमें करने होंगे। अध्यक्ष पद के लिए जो हमारा विरोध है, उसे वापस लेने के लिए हमें संकोच नहीं करना चाहिए बल्कि यह आग्रह करना चाहिए कि कलकत्ता में जिस रूप में बहिष्कार का प्रस्ताव पारित हुआ उसी तरह से वह यहाँ भी पारित हो। इस माँग को वे अस्वीकार नहीं कर सकेंगे।''

इस पर बम्बई के एक तेज-तर्रार युवक ने एक उपाय बताया, ''नरमपन्थियों का बहुमत आखिर कितना है! चन्दा भरनेवाले सदस्यों की संख्या ही तो अधिक है न! तो हम लोग भी दस-बीस हजार खर्च कर देंगे और भरपूर सदस्य बना लेंगे। फिर तो हम भी बहुमत में आ जाएँगे।''

लोकमान्य तिलक हँस दिये, ''आप बीस हजार खर्च करेंगे तो मेहता चालीस हजार की व्यवस्था कर लेंगे। इस तरह से काँग्रेस आपके हाथ में नहीं आएगी।''

''न काँग्रेस हाथ में आएगी, न काँग्रेस छोड़नी है। नरमपन्थी साजिश के जरिये अपनी पसन्द से अध्यक्ष का चयन करें और हम केवल देखते रहें! गोखले जो चाहें, प्रस्ताव ध्वनिमत से पारित करवा लें और हम केवल दर्शक बने रहें! तो फिर काँग्रेस में हमारे शामिल होने का प्रयोजन ही क्या है?'' बेलगाँव के एक युवक ने अपनी खीज व्यक्त की।

लोकमान्य तिलक ने रूखेपन के साथ कहा, ''इतनी जल्दी निराश होने वाले लोगों को राजनीति से दूर ही रहना चाहिए।''

आखिरकार काफी बहस-मुबाहसे के बाद लोकमान्य तिलक का कहना सबने मान लिया। उसके बाद गरमपन्थी प्रतिनिधियों की विधिवत् बैठक बुलायी गयी।

लोकमान्य तिलक ने जानबूझकर अरविन्द घोष को उसका अध्यक्ष बनाया। उस बैठक में लोकमान्य तिलक की नीति स्वीकार कर ली गयी और उसके सफल कार्यान्वयन के लिए कुछेक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति कर दी गयी।

ये लोग सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से मिले। कई दौर में मुलाकातें होती रहीं। लेकिन ढाका के कलेक्टर पर गोली चलाये जाने की घटना से नरमपन्थी नेता उखड़ गये थे। वे गरमपन्थियों के साये से भी दूर रहना चाहते थे। इसलिए वे टाल-मटोल करने लगे।

इधर प्रतिनिधियों के शिविर में जोरदार प्रचार अभियान चल रहा था। दोनों खेमे के नेता लगातार प्रतिनिधियों से मुलाकातें करने लगे थे। पैम्फ्लेट बाँटे जा रहे थे। लालच दिये जा रहे थे, प्रतिनिधियों को अपने वश में करने के लिए उचित-अनुचित सभी तरीके अपनाये जा रहे थे। फिरोजशाह मेहता जैसे वरिष्ठ-बलिष्ठ व्यक्ति भी शिविर में हो आये। रात हो जाने पर भी यह सिलसिला जारी रहा। उस रात कोई भी चैन से सो नहीं पाया। सभी लोगों की भागदौड़ चलती रही।

इन सरगर्मियों के बीच तापी नदी शान्त रूप से बह रही थी।

तापी नदी के किनारे फ्रेंच गार्डन में काँग्रेस का भव्य पण्डाल सजा था। वहाँ की साज-सज्जा मेहता के उमरावी ठाठ-बाट के अनुरूप तथा सभी व्यवस्थाएँ गरमपन्थियों को नियन्त्रित रखने की दृष्टि से ही थीं। नागपुर के प्रतिनिधियों की उद्दण्डता से मेहता भली-भाँति परिचित थे। मुंजे से तो वे सख्त नाराज थे। इसीलिए इन प्रतिनिधियों को मंच से दूर ही रखा गया था। इसके अलावा, महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों को, बीच में पर्याप्त अन्तर रखकर, अलग-अलग स्थान पर बिठाया गया था। बंगाली और पंजाबी प्रतिनिधियों के साथ भी यही हुआ था। तथापि पण्डाल के आस-पास कुछ गुण्डानुमा व्यक्ति स्वयंसेवक या दर्शक के रूप में मौजूद थे और उनकी गतिविधियाँ सन्देहास्पद लग रही थीं।

पण्डाल में एक हजार छह सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे। उनमें से पाँच सौ गरमपन्थी और बाकी सब नरमपन्थी सदस्य थे। इनके अलावा आठ-नौ हजार दर्शक भी थे। तथा इन दर्शकों में गरमपन्थियों के पक्षधर ही अधिक संख्या में थे। दिसम्बर महीना होने के बावजूद दर्शकों से खचाखच भरे उस पण्डाल में दोपहर के समय उमस हो रही थी। लोग उसाँसें छोड़ते हुए पसीना पोंछ रहे थे, गत्ते के टुकड़ों से हवा ले रहे थे। तथापि वहाँ का वातावरण अत्यन्त उत्साह और उथल-पुथल से भरा था। सभी को लग रहा था कि लीक से हटकर, कुछ नाटकीय घटना होनेवाली है। बल्कि उलटे दिमाग की इनसानी प्रवृत्ति के अनुसार वे चाहते भी थे कि ऐसा कुछ हो। उल्टी-सीधी अफवाहों का बाजार गर्म था। 'समझौता हो गया', 'वार्ता विफल रही', 'बातचीत का

दूसरा दौर शुरू' आदि खबरें आग की तरह जोर पकड़ रही थीं, फिर शान्त हो रही थीं। यदा-कदा 'वन्दे मातरम्' का नारा तो कभी-कभी 'शेम' 'शेम' की आवाज सुनाई पड़ जाती थी। बीच-बीच में हँसी का एकाध फव्वारा भी फूट पड़ता था।

वहाँ लोकमान्य तिलक के प्रवेश करते ही तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उनका स्वागत किया गया। दो-चार लोगों के मुँह से 'शेम' 'शेम' भी सुना गया। लाला लाजपतराय का भी अत्यन्त गर्मजोशी के साथ स्वागत हुआ। लेकिन उन्हें 'शेम' 'शेम' के उपहार से वंचित ही रहना पड़ा। लोकमान्य तिलक के लिए मंच पर स्थान निर्धारित नहीं था। वे प्रतिनिधियों के साथ ही अग्रिम पंक्ति में बैठ गये। यह देखकर लोगों में उत्तेजना फैलने लगी। गरमपन्थियों के मुँह से 'शेम' 'शेम' सुनकर नरमपन्थी भी शोर-शराबा करने लगे।

कुछ देर बाद नियोजित अध्यक्ष अन्य वरिष्ठ नेताओं के साथ एक जुलूस के अन्तिम पड़ाव में यहाँ आ पहुँचे। उनके स्वागत में औपचारिक तालियों की आवाज आना स्वाभाविक था। सभी लोग यह जानते थे कि इस सभा के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वे नहीं थे। नियोजित अध्यक्ष ने अपना स्थान ग्रहण किया। उनके पीछे दो पंक्ति कुर्सियाँ थीं। वहाँ स्वागत-समिति के सदस्य विराजमान हुए।

औपचारिकता का गुबार दब जाने पर स्वागत-समिति के अध्यक्ष मालवी उठ खड़े हुए। उनकी जिन्दगी की यह एक महत्त्वपूर्ण घड़ी थी। और उसी के अनुरूप एक लम्बा-चौड़ा और प्रभावी भाषण उन्होंने लिखकर तैयार किया था। स्वागताध्यक्ष को अपने शहर का महत्त्व बतलाना चाहिए। तदनुसार मालवी ने मुगलों के जमाने से सूरत का इतिहास बयान करना शुरू किया। उसमें उन्होंने छोटी-मोटी बारीकियों को भी शामिल किया। फिर भी वे अपने भाषण में रोचकता नहीं ला सके। नीचे देखते हुए, रूखी आवाज में सॉलिसिटर साहब अपना भाषण पूरी एकाग्रता से पढ़कर सुना रहे थे। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि वहाँ के परिवेश में कितना तनाव व्याप्त है, स्थिति कितनी विस्फोटक है, कितना भयंकर तूफान मँडरा रहा है, लोगों की उत्सुकता किस कदर चरम-सीमा पर पहुँच गयी है आदि। वे अपना भाषण पढ़ने में ही व्यस्त थे। सूरत शहर का महत्त्व विशद करने के बाद वे काँग्रेस का इतिहास बयान करने लगे। इसमें भी विस्तृत ब्यौरे शामिल थे।

लोग ऊब रहे थे। उनका दिल जोर से चिल्लाकर कहने को मचल रहा था कि 'यह इतिहास का विवरण अब समाप्त कीजिए। इन मुर्दा घटनाओं से भला हमें क्या लेना-देना! आप वर्तमान के बारे में कुछ कहिए। क्या आप नहीं जानते कि स्थिति कितनी विस्फोटक बन गयी है?'

उनमें से कुछ उच्छृंखल किस्म के लोग ठहाके मारने लगे, हल्की-हल्की तालियाँ पीटने लगे। लेकिन उनके कप्तानों ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। यह मौका

ही ऐसा था कि सभी को फूँक-फूँककर कदम रखना था। थोड़ा-सा भी आपे से बाहर हो जाने पर कुछ भी अप्रिय हो सकता था। उच्छृंखलता पर पाबन्दी लग जाने से लोग आपस में बतियाने लगे। हल्ला-गुल्ला इतना अधिक हो गया कि अग्रिम पंक्ति में बैठे लोग भी मालवी का भाषण नहीं सुना पा रहे थे।

मंच पर बैठे नेता बेचैन हो रहे थे। उनकी भौंहें तन गयीं। गोखले अपनी बेचैनी को तो चाहते हुए भी नहीं रोक पा रहे थे, जबकि मालवी इससे बिलकुल ही अछूते थे। वे अपना भाषण पढ़ने में ही खोये हुए थे। आखिरकार उनका भाषण समाप्त हुआ और राहत की साँस लेकर वे अपनी कुर्सी पर बैठ गये।

सभा में चेतना की लहर दौड़ गयी। आपसी बातचीत और गपशप का दौर समाप्त हुआ। सब लोग दत्तचित्त होकर अगली कार्रवाई की प्रतीक्षा करने लगे।

अब अध्यक्ष पद के लिए रासबिहारी घोष के नाम का प्रस्ताव रखने के इरादे से दीवान बहादुर अम्बालाल साकरलाल उठ खड़े हुए। उनकी बातचीत और व्यवहार से अक्खड़पन ही झलकता था। लेकिन उस दिन श्रोताओं की इतनी बड़ी संख्या देकर वे सहम गये। उनके मुँह से 'घोष' नाम निकला नहीं कि चारों तरफ शोर होने लगा। किसी ने 'शेम' 'शेम' कहा तो किसी ने तालियाँ बजायीं। किसी ने ठहाका लगाया तो किसी ने सीटी बजायी। नरमपन्थी प्रतिनिधि इन वारदातों का चिल्ला-चिल्लाकर निषेध कर रहे थे। और इस वजह से शोर-शराबा कम होने के बजाय और भी बढ़ गया था।

इस वजह से दीवान बहादुर का नूर भी पलट गया और उन्होंने अपना भाषण जल्दी ही समेट लिया। गरमपन्थियों ने भी उन्हें उकसाने की कोशिश नहीं की। उनका निशाना तो किसी दूसरे नेता पर सधा था।

उसके बाद सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी भाषण करने लगे। इससे पहले ऐसी सैकड़ों सभाओं में वे भाषण कर चुके थे। बड़ी-से-बड़ी सभा के आखिरी छोर पर बैठे हुए श्रोता भी उनकी आवाज अच्छी तरह से सुन सकते थे। हजारों श्रोताओं के दिल को छूकर संवेदना के तार झंकृत करने की सामर्थ्य उनकी वाणी में थी। बड़े आत्मविश्वास और गर्व के साथ वे भाषण करने के लिए उठ खड़े हुए। फिरोजशाह मेहता सन्तुष्ट दिखाई पड़ रहे थे। गोखले तो बच्चों-सी खुशी से खिल उठे।

लेकिन अबकी बार सुरेन्द्रबाबू के मुँह खोलते ही चारों ओर भगदड़ मच गयी। बंगाली प्रतिनिधि अपने स्थान से उठकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे, "ट्रेटर ऑफ़ मिदनापुर! ट्रेटर ऑफ़ मिदनापुर!" मिदनापुर की एक सभा के दौरान गरमपन्थियों को नियन्त्रित करने के लिए सुरेन्द्रबाबू ने पुलिस की सहायता ली थी। ब्रिटिश सरकार की पुलिस की सहायता से उन्होंने देशवासियों को सभा से बाहर कर दिया था। वह गुस्सा लोगों के मन में लावा की तरह उफन रहा था। नरमपन्थी प्रतिनिधि तुनककर

गरमपन्थी बंगालियों पर बिफरने लगे। इसी बीच नागपुरवासियों ने भी अपना असली रूप दिखाना शुरू कर दिया। उसके बाद पंजाबी प्रतिनिधि भी अपनी असलियत पर उतर आये। और अन्ततः झकाझक पगड़ी पहनी दो-चार मद्रासी खोपड़ियाँ भी तैश में आकर अपना रंग दिखाने लगीं। गरमपन्थियों को विकेन्द्रित रूप से बिठाने की योजना अब उन्हीं के लिए भारी पड़ रही थी।

सभी लोग खड़े हो गये और हाथापाई की नौबत आ गयी। लोगों ने मुट्ठियाँ भींच लीं। डण्डे, छाते आदि से भिड़ने के लिए वे तत्पर हो गये।

सुरेन्द्रबाबू की गरजती हुई आवाज इस शोर-शराबे में विलुप्त हो गयी। केवल उनके हाथों और जबड़े की हलचल देखी जा सकती थी।

मंच पर बैठे प्रतिष्ठित नेता जोर-शोर से इस घटना का निषेध करने लगे। फिरोजशाह मेहता की भौंहें तन गयीं। वे उठ खड़े हुए लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। काँग्रेस के नियोजित अध्यक्ष डॉ. घोष का उठ खड़ा होना और लोगों को शान्त हो जाने के लिए कहना निरर्थक सिद्ध हुआ। हल्ला-गुल्ला निरन्तर बढ़ता ही जा रहा था। लोग चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे। लट्ठ भाँज रहे थे और हुल्लड़बाजी कर रहे थे। लगता था कि पण्डाल अब गिरा, तब गिरा।

आखिरकार फिरोजशाह मेहता के अनुरोध पर स्वागताध्यक्ष टेबल पर खड़े हुए और सम्मेलन एक दिन के लिए स्थगित किये जाने की घोषणा उन्होंने कर दी।

शुरू-शुरू में तो लोग समझ ही नहीं पाये कि क्या हो रहा है। लेकिन हकीकत पता चल जाने पर वे चुप हो गये। यह एक अनोखी घटना थी, जो शायद पहली बार हुई थी। लोगों को जब पता चला तो वे सिर थामकर अपने-अपने मुकाम पर चले गये।

घीकाँटावाड़ी में गरमपन्थी प्रतिनिधियों के जमावड़े में हर व्यक्ति अपनी तरह से परिस्थिति का विश्लेषण कर रहा था। भावी कार्य-योजना की दिशा निर्धारित की जा रही थी। विभिन्न समूहों में बड़े ही जोर-शोर से बहस होने लगी थी। एक समूह के लोग बीच में ही उठकर दूसरे समूह में जा रहे थे, अथवा इसके विपरीत क्रम भी था। सभी के दिमाग आसमान पर चढ़े हुए थे।

इस पूरे कोलाहल के बीच में एक ही आदमी ठण्डे दिमाग से बैठा था—लोकमान्य तिलक।

बहस के बाद सब लोगों के दिमाग शान्त हो जाने पर लोकमान्य तिलक ने नेताओं की एक बैठक आयोजित की और सवाल किया, "अब आगे क्या करना है?"

सभी ने एक-स्वर में कहा, "इन नरमपन्थियों के साथ अब हमारी नहीं निभ

सकेगी। या तो वे काँग्रेस में रहेंगे या हम लोग। फिलहाल काँग्रेस में उनका बहुमत है। इसलिए बेहतर यही होगा कि हम ही अलग हो जाएँ और स्वतन्त्र राष्ट्रीय पार्टी की स्थापना करें। नरमपन्थियों की फीकी-फीकी राजनीति से तो बाज आ गये हैं।''

''हमारी स्वतन्त्र राष्ट्रीय पार्टी तो अब बन ही चुकी है। उसकी स्थापना के लिए काँग्रेस से अलग हो जाने की क्या जरूरत है? बल्कि काँग्रेस में रहने में ही हमारा फायदा है। क्योंकि हमारी पार्टी दिनोंदिन फलेगी-फूलेगी और अन्ततः काँग्रेस पर हमारा ही कब्जा हो जाएगा। इसलिए आततायी बनने से कोई फायदा नहीं होगा।'' लोकमान्य तिलक ने स्थिर निगाहों से चारों ओर देखा।

''इसका मतलब यह हुआ कि फिलहाल हम नरमपन्थियों की हाँ-में-हाँ मिलाते रहेंगे?'' एक सदस्य ने झुँझलाकर पूछा।

''मैंने काँग्रेस से जुड़े रहने की सलाह दी है, नरमपन्थियों की नीतियों से सहमत होने की नहीं। ये दोनों बातें सर्वथा भिन्न हैं। हम इस काँग्रेस में नरमपन्थियों का जमकर विरोध करेंगे। लेकिन काँग्रेस को अभंग रखेंगे। नरमपन्थियों का बहुमत हो जाने से हम काँग्रेस नहीं छोड़ेंगे। एकता चाहे जितनी मामूली हो, राजनीति में उसका बहुत महत्त्व होता है। अतः मैं एक कदम आगे बढ़कर कहना चाहूँगा कि हमें समझौते का एक प्रयास और करना चाहिए। कलकत्ता में जो बहिष्कार-प्रस्ताव पारित हुआ, उसी तरह के प्रस्ताव के लिए भी यदि नरमपन्थी सहमत हो जाते हैं तो भी हमें समझौते के लिए राजी हो जाना चाहिए।'' लोकमान्य तिलक अपनी निगाहों से श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं की टोह ले रहे थे।

''युधिष्ठिर जैसे समझौते के प्रयास में विफल रहे, ठीक वही हालत आपकी भी हो जाएगी।'' हथेली पर मुट्ठी पटकते हुए मुंजे ने कहा।

''और भगवान कृष्ण ने भी स्वीकार किया था कि प्रयास भले ही विफल रहे हों, फिर भी ये प्रयास आवश्यक थे। बल्कि उसमें उन्होंने पहल भी की थी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अँगरेज ही हमारे असली दुश्मन हैं। आखिरकार नरमपन्थी हमारे ही भाई हैं। स्वराज्य प्राप्त करने में उनका भी हित है। उनके साथ हमारी लड़ाई जरूर है, दुश्मनी नहीं। इसीलिए इस झगड़े को अतिरिक्त महत्त्व देकर हमें अपनी शक्ति जाया नहीं करनी चाहिए।'' लोकमान्य तिलक ने राजनीति का विशाल कैनवास अपने अनुयायियों के सामने रखा।

इस पर काफी बहस हुई। अन्ततः एक युवा प्रतिनिधि झुँझला उठा, ''ठीक है। कीजिए समझौते का प्रयास। और नरमपन्थी यदि अस्वीकार कर दें तो? फिर तो आपको युद्ध करने के लिए तैयार रहना होगा न!''

''यदि समझौता नहीं हुआ तो एक उप-सूचना के जरिये डॉ. रासबिहारी घोष के नाम का विरोध मैं खुद करूँगा। लेकिन मेरा कानूनी विरोध होगा। उसमें कोई शोर-

शराबा नहीं होगा। सब लोग बुत बने बैठेंगे। मेरी उप-सूचना का समर्थन वही करे, जिसका दिमाग ठण्डा हो। इस काम के लिए हमारे नरसोपन्त उपयुक्त व्यक्ति हैं।'' लोकमान्य तिलक ने अपनी आँखें नरसोपन्त पर गड़ायीं।

सभी की निगाहें नरसोपन्त पर जा थमीं।

नरसोपन्त पलभर के लिए बेचैन हो गये और बैठे-बैठे ही उन्होंने थोड़ी-सी हलचल की। लेकिन उसके बाद साहस बटोरकर उन्होंने कहा, ''यह काम मुझसे नहीं होगा।''

सभा में भी थोड़ी-सी हलचल हुई। एक आदमी तैश में आकर बोला, ''नरसोपन्त हमारे आदमी नहीं हैं। वे अक्सर गोखले के घर जाते-आते हैं। इसलिए उन्हें हमारे खेमे से निकाल बाहर कर देना चाहिए। ऐसे भेदिये हमारे किस काम के?''

नरसोपन्त एकाएक उठ खड़े हुए, ''यदि आप ऐसा ही सोचते हैं तो मैं यहाँ से चला। मैंने अपने विचारों से तिलक जी को स्पष्ट रूप से अवगत करा दिया है। मैंने तो 'मराठा' के सम्पादक पद से अलग होने की भी तत्परता दिखलायी थी, लेकिन उन्होंने ही मुझे ऐसा करने से रोक दिया, इसलिए मैं रुका रहा।''

''लेकिन केवल उप-सूचना का अनुमोदन करने में हर्ज ही क्या है? क्या इतना साहस दिखाने की धृष्टता भी आप नहीं कर सकते?'' एक व्यक्ति ने सवाल किया।

''रासबिहारी बाबू को स्वागत-समिति ने चुना है। और काँग्रेस में उन्हें बहुमत का समर्थन भी प्राप्त है। फिर उनका विरोध करने में भला क्या तुक है? वे हर हालत में काँग्रेस के नेता बनने वाले हैं। हम सब लोगों के नेता बनेंगे वे। इसलिए हमें उनका लिहाज करना चाहिए। हम लोग नरमपन्थियों के प्रस्तावों का अवश्य विरोध करेंगे, लेकिन रासबिहारी घोष का नहीं। वैसा करना शिष्ट सम्मत नहीं होगा, न ही अब तक की प्रथा के अनुरूप होगा। इसके अलावा, हम लोगों पर ओछेपन का आरोप लगाने का मौका भी बाकी लोगों को मिलेगा।'' नरसोपन्त ने अपने विचार स्पष्ट किये।

राजनीति क्या है? उसका स्वरूप क्या होता है? राजनीति में दादागिरी करना क्यों आवश्यक होता है, आदि बातें नरसोपन्त को अच्छी तरह से समझाने के लिए बलवन्तराव का दिल कर रहा था। लेकिन उसके लिए यह उपयुक्त अवसर नहीं था। और फिर नरसोपन्त यह सब समझने की स्थिति में भी नहीं थे, फिर उनके सहमत होने की बात तो दूर रही। इसलिए लोकमान्य तिलक ने यह बहस यहीं बन्द की, और अपनी नीति सबसे मनवा ली।

उस रात और दूसरे दिन भी लोकमान्य तिलक ने समझौते के सभी सम्भव प्रयास किये। नरमपन्थी नेताओं के पास भी गये। लेकिन मालवी भगवान की पूजा में इतने अधिक व्यस्त थे कि उनके पास लोकमान्य तिलक से मिलने का समय ही नहीं था। और भी कुछेक नेता इसी तरह से टाल-मटोल करते रहे। निरन्तर, अथक प्रयासों के

बावजूद काँग्रेस सम्मेलन के शुरू होने तक कोई समझौता नहीं हो सका। लोकमान्य तिलक के प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए। गरमपन्थियों की मामूली-से-मामूली बात भी नागवार गुजर रही थी। अन्ततः अध्यक्ष पद के चुनाव के प्रति विरोध प्रकट करने का निर्णय लोकमान्य तिलक को लेना पड़ा। और अब वे उसकी तैयारी में लग गये।

काँग्रेस का स्थगित अधिवेशन दूसरे दिन जैसे-तैसे फिर शुरू हुआ। भीड़ उतनी ही थी, बल्कि पहले से कुछ अधिक ही होगी। वातावरण कुछ अधिक ही तनावपूर्ण और उत्कण्ठाजनक था। लेकिन कहीं कोई गड़बड़ नहीं थी। 'बुत बने रहिए' लोकमान्य तिलक के इस आदेश का पालन गरमपन्थी प्रतिनिधि बाकायदा कर रहे थे। डॉ. मुंजे भी इसका अपवाद नहीं थे। तथापि, गुण्डानुमा दो-चार मुसलमान मुस्टण्डे मध्यप्रान्त के ब्लॉक के पास देखे गये तो उन्हें वहाँ से खदेड़ने का काम जरूर उन्होंने किया।

दरअसल मुंजे को पहले से ही हल्की-सी भनक तो थी ही कि बलवन्तराव ऐसी किसी तैयारी में जुटे हुए हैं और मध्यप्रान्त के प्रतिनिधियों से वे कुछ ज्यादा ही खफा हैं। इसीलिए अपने लोगों को लट्ठ आदि देकर उन्होंने पूरी तैयारी के साथ बिठाया था। साथ ही, लोकमान्य तिलक को भी इस स्थिति से उन्होंने अवगत करा दिया था। लेकिन लोकमान्य तिलक को इस बात पर यकीन नहीं हो रहा था। उन्होंने अशान्ति न फैलाने के लिए मुंजे को फिर एक बार आगाह कर दिया था।

नरमपन्थी नेता भी कुछ सहमे हुए थे। इसलिए अबकी बार मंच पर लोकमान्य तिलक के लिए एक कुर्सी उन्होंने बाकायदा रखवा दी थी। लेकिन वे वहाँ नहीं, श्रोताओं की अग्रिम पंक्ति में ही बैठे थे। उन्होंने एक चिट्ठी लिखकर तैयार रखी थी। स्वागताध्यक्ष मालवी जी जैसे ही मंच पर आये, वैसे ही उन्होंने एक युवक के हाथ से वह चिट्ठी मालवी के पास भिजवा दी। सबके सामने ही यह सब हुआ और लोकमान्य तिलक चाहते भी यही थे। यही उनकी योजना थी। चिट्ठी पढ़कर मालवी हक्के-बक्के रह गये। उन्होंने हड़बड़ाकर चिट्ठी जेब में रख ली। वे इस चिट्ठी से इतने आतंकित थे मानो उसे देखने से ही उत्पात होने का खतरा उन्हें दिखाई दे रहा था।

सभा प्रारम्भ हुई। सुरेन्द्रबाबू बोलने के लिए उठे। सभी को लग रहा था कि फिर से भगदड़ मचेगी। लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। गरमपन्थी प्रतिनिधि चुप रहे। सुरेन्द्रबाबू ने भी अपनी वक्तृत्व-कला का पाण्डित्य प्रदर्शन न करते हुए संक्षेप में अपना वक्तव्य समेट लिया। वे अत्यन्त सौम्य शब्दों में बोले। उनके बाद मोतीलाल नेहरू उठ खड़े हुए और उन्होंने सुरेन्द्रबाबू के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। स्थिति की गम्भीरता को देखकर उन्होंने दस वाक्यों में ही अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।

इस पर नरमपन्थियों ने 'यस यस' कहकर प्रस्ताव के प्रति अपना अनुमोदन

व्यक्त किया। उसी के साथ-साथ विपक्षी सदस्यों ने भी 'नो नो' की आवाज दी।

अब लोकमान्य तिलक बोलने की तैयारी में थे। लेकिन लोकमान्य तिलक की यह हरकत देखकर मालवी ने जल्दी-जल्दी अध्यक्ष सम्बन्धी प्रस्ताव पारित होने की घोषणा की और रासबिहारी घोष ने अध्यक्ष की कुर्सी तुरन्त हथिया ली तथा एक वाक्य में उन्होंने आभार प्रदर्शन भी कर दिया।

तभी लोकमान्य तिलक उठ खड़े हुए। अपनी चिट्ठी की उपेक्षा कर स्थगन-प्रस्ताव रखने का अवसर न दिये जाने से वे लपककर मंच की ओर बढ़ गये। यह देखकर आस-पास के नरमपन्थी सदस्य उठकर हाथ हिलाते हुए चिल्लाने लगे। एक प्रतिनिधि ने तो उठकर लोकमान्य तिलक की बाँह भी पकड़ ली। लेकिन एक झटके से ही उनकी बाँह उसकी गिरफ्त से अलग हो गयी। एक स्वयंसेवक उनके रास्ते में आया लेकिन लोकमान्य तिलक की एक आग्नेय निगाह से ही वह ठण्डा पड़ गया। उसे दूर हटाकर लोकमान्य तिलक मंच पर आये और डॉ. रासबिहारी घोष के सामने खड़े हो गये। डॉ. घोष के मुँह से एक वाक्य भी आगे नहीं निकल पाया।

सभा में एक जोरदार धमाका-सा हो गया। अग्रिम पंक्ति में बैठे नरमपन्थी प्रतिनिधि हाथ हिला-हिलाकर जोरों से चिल्लाने लगे। गरमपन्थी सदस्य काफी दूर बैठे थे। लेकिन वहीं से वे भी मुँह-तोड़ जवाब देने लगे। उनमें से कुछेक सदस्य अधीर होकर मंच की ओर दौड़ पड़े। फिर एक बार भगदड़ मच गयी और शोर-शराबा होने लगा। वे हाथ, लठ, छाते भाँजने लगे। सभा में हड़कम्प-सा मच गया। लोग हैरत में पड़ गये। नेता हड़बड़ा गये। एकाएक सारा वातावरण अशान्त हो गया।

लेकिन लोकमान्य तिलक शान्त-संयत थे। उन्होंने कहा, "जैसा कि मैंने सूचित किया था, मैं स्थगन-प्रस्ताव रखना चाहता हूँ और इसीलिए यहाँ आया हूँ।"

मालवी ने तैश में आकर कहा, "आपकी सूचना को मैंने गैरकानूनी करार दे दिया है। आप यह प्रस्ताव नहीं रख सकेंगे।"

इस पर लोकमान्य तिलक ने कहा, "आप कौन होते हैं मुझे रोकनेवाले? आप अध्यक्ष नहीं हैं।"

इस पर डॉ. घोष ने हाथ हिलाकर कहा, "मैं भी तो आपसे यही कह रहा हूँ।"

लोकमान्य तिलक ने शान्तिपूर्वक कहा, "आप अध्यक्ष ही कहाँ हैं? आपका चुनाव तो हुआ नहीं। मैं तो प्रतिनिधियों को सम्बोधित कर रहा हूँ।"

लोकमान्य तिलक ने कानूनी रुख अपनाते हुए सभा अध्यक्ष-रहित होने का दावा किया। और वे मुड़कर प्रतिनिधियों के सामने बोलने लगे।

मंच पर उथल-पुथल मच रही थी। फिरोजशाह मेहता उखड़े-उखड़े से लग रहे थे। गोखले अत्यन्त बेचैन और उद्विग्न-से दिखाई पड़ रहे थे। मालवी अपनी ही जगह पर जल-भुनकर रह गये। डॉ. घोष अपने अध्यक्षीय अन्दाज में टेबल पर रखी

घण्टी शान्ति-स्थापना के अनुरोध के साथ बजाने लगे।

इधर श्रोताओं की अग्रिम पंक्ति में बैठे नरमपन्थी युवक अपनी जगह से उठ जोरदार हाथ हिलाने लगे, चिल्ला-चिल्लाकर लोकमान्य तिलक को बुरा-भला कहने लगे। उनमें से कई लोग तो मुट्ठी भींचकर लोकमान्य तिलक को मंच से नीचे उतारने के लिए लपक पड़े। एक आदमी ने लोकमान्य तिलक को मारने के लिए कुर्सी भी उठा ली।

यह देखकर लोकमान्य तिलक ने अपने दोनों हाथ मोड़कर अपने सीने को सुरक्षा प्रदान की और पैर गड़ाकर, उन्हें ललकारने के अन्दाज में खड़े हो गये। मानो वे कहना चाहते थे, "आओ! देखता हूँ, किसकी कितनी ताकत है। लेकिन आप चाहे जितना जोर लगाइए, दुनिया इधर की उधर हो जाए या आसमान टूट पड़े, मैं अपनी जगह से हिलूँगा नहीं।"

गोखले दौड़कर आये और दोनों बाँह फैलाकर लोकमान्य तिलक को सुरक्षा प्रदान करने के अन्दाज में खड़े हो गये। वे नरमपन्थियों से अनुरोध करने लगे, "शान्त हो जाइए, बैठ जाइए। कोई भी गलत काम मत कीजिए। तिलक के साथ थोड़ा-सा भी दुर्व्यवहार हुआ तो यहाँ रक्तपात हो जाएगा।"

लेकिन उनका यह अनुरोध किसी को सुनाई नहीं पड़ रहा था। अब डॉ. घोष टेबल पर खड़े होकर घण्टी बजाने लगे थे और चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को शान्त होने के लिए कह रहे थे। लेकिन लोग न उनकी घण्टी सुन पा रहे थे, न उनकी आवाज सुनने की मन:स्थिति में वे थे। वे सिर्फ घण्टी बजाने की क्रिया और उनके होठों की हलचल देख पा रहे थे, बस।

श्रोताओं में एक जबरदस्त उद्वेग आ गया था। चीख-पुकार मची हुई थी। धका-पेल चल रही थी, मुक्के-घूँसे चलने लगे थे। लोग लठ भाँज रहे थे। कुर्सियाँ उठा-उठाकर पटक रहे थे और उत्तेजित होकर शोर कर रहे थे। सभी की भौंहें तनी हुई थीं। इसी बीच एक कुर्सी लोकमान्य तिलक की दिशा में फेंकी गयी। लेकिन पंजाब के एक कद्दावर प्रतिनिधि ने बीच में ही उस कुर्सी को रोक लिया। उसके बाद लाल-पुणेरी जूता हवा में उछला। उस नोकदार, कड़े जूते में नाल लगी थी। जाहिर है कि किसी गरमपन्थी ने ही उसे फेंका था। शायद वह निशानेबाज भी था। वह जूता फिरोजशाह मेहता के चेहरे को स्पर्श कर सुरेन्द्रबाबू से टकराते हुए आगे निकल गया।

यह देखकर नरमपन्थी प्रतिनिधि विचलित हो गये। वे लोकमान्य तिलक पर धावा बोलने के इरादे से झपट पड़े। मंच पर आये मुट्ठी-भर गरमपन्थी प्रतिनिधि उन्हें पीछे धकेलने लगे।

लोकमान्य तिलक अविचल खड़े थे। बरसों से वे एक शक्ति-सम्पन्न साम्राज्य के मुकाबले में इसी तरह से डटकर खड़े थे, उन्हें ललकार रहे थे। जेल में बन्द कर

दिया गया, चरित्र को मटियामेट करने की कोशिश की गयी, फिर भी वे अचल रहे। उसके सामने तो यह हल्ला-गुल्ला 'किस झाड़ की पत्ती' था। शायद ठण्डे दिमाग से मन-ही-मन वे गणित का कोई जुमला हल कर रहे थे।

नरमपन्थियों का हमला शुरू हुआ। इसी बीच, दूर बैठे मध्य प्रान्त के प्रतिनिधियों की कुमुक आ गयी। कुर्सियाँ फाँदकर लठ भाँजते हुए वे दौड़कर आ गये। डॉ. मुंजे ने अखबार के संवाददाता अल्फ्रेड नन्दी की कुर्सी पर पैर रखा और छलाँग लगाकर मंच पर आ पहुँचे। नन्दी जोर-जोर से चिल्लाकर निषेध कर रहे थे। लेकिन वे खुद भी अपनी आवाज नहीं सुन पाये। कुछ ही देर में लोकमान्य तिलक के गिर्द उनके अनुयायियों का जबरदस्त सुरक्षा-चक्र बनकर तैयार हो गया।

कुर्सियाँ फेंकी जा रही थीं। डण्डे बरस रहे थे।

डॉ. घोष अभी भी टेबल पर चढ़कर घण्टी बजा रहे थे और उनके होठों की हलचल भी दिखाई पड़ रही थी।

अन्ततः एक नरमपन्थी नेता उन्हें मंच से नीचे लिवा लाये और वे सब लोग पिछवाड़े के दरवाजे से बाहर चले गये।

लोकमान्य तिलक से किसी ने पूछा, ''आपको कहीं कोई चोट-वोट तो नहीं आयी?''

वे हँस पड़े, ''मुझे कोई भी चोट नहीं पहुँचा सकता। आप महिलाओं की ओर ध्यान दीजिए। वे घबरायी-सी लग रही हैं।''

लोकमान्य तिलक के अनुयायी महिलाओं को हिफाजत से घर पहुँचाने में सहायता करने लग गये।

उसके बाद मुंजे ने लोकमान्य तिलक से कहा, ''अब आप भी यहाँ से चलिए। बगलवाले तम्बू में कुछ देर आराम कीजिए।''

''अभी मैं थका नहीं हूँ'' कहकर उन्होंने सुपारी का एक टुकड़ा मुँह में डाला। इसी बीच अरविन्द बाबू वहाँ आ गये। अभी-अभी हुई वारदात से वे दंग रह गये थे। उनका चेहरा मुरझा गया था।

लोकमान्य तिलक ने उनसे कहा, ''इसमें कोई खास नहीं। सभा तोड़ने का प्रयास हमारे लिए नया नहीं है।''

इसी बीच पुलिस आ गयी थी और उन्होंने पण्डाल खाली करवा लिया था।

काँग्रेस टूट चुकी थी।

उसे जोड़ने का प्रयास सूरत में जरूर हुआ। बाद में 'कसूर किसका है' इस विषय पर अनन्त काल तक बहस चलती रही।

लेकिन उसमें कोई दम नहीं था। हिन्दुस्तानी राजनीति का एक नया पर्व शुरू हो गया था। उसमें नयी शक्तियाँ एकत्र होने लगी थीं। बाढ़ के उफान से नदी के

किनारे बसे मकान जिस प्रकार तहस-नहस हो जाते हैं, उसी तरह से काँग्रेस तबाह हो गयी थी। सफेदपोश, उच्च कोटि के राजनीतिक युक्तिवाद के दिन अब लद चुके थे। उसके स्थान पर अब एक मटमैली प्रक्षुब्ध राजनीति का दौर शुरू हुआ था।

इस नयी ताकत को बलवन्तराव तिलक ने रास्ता दिखाया था और उन्हें ही अब उसका सारथी बनना था।

राजनीति में शुष्क बहसबाजी या माथापच्ची का कोई महत्त्व नहीं होता। वहाँ कृति ही अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। राजनीति में एक दाँव-पेंच घिसा-पिटा हो जाए तो इसी में न उलझते हुए दूसरा नया जाल बिछाना आवश्यक हो जाता है। एक जगह यदि मात खानी पड़े तो दूसरी जगह धावा बोलना पड़ता है। अपने पास ताकत न होते हुए भी धूल के गुबारे उड़ाते रहना चाहिए। जहाँ कोई विशेष खतरा न हो, ऐसी जगहों पर अपनी ताकत का जोरदार प्रदर्शन करना चाहिए। और यह सब करने के साथ ही, अपनी ताकतों का एक केन्द्र बनाते रहना चाहिए।

राजनीति के ये सभी दाँव-पेंच लोकमान्य तिलक को अच्छी तरह से ज्ञात थे। दरअसल उन्हें अपने तईं राजनीतिक युद्धनीति बनानी पड़ी। लगभग सौ वर्षों से इस देश में राजनीतिक परम्परा खण्डित हो गयी थी। और फिर पुरानी परम्परा सशस्त्र राजनीति की समर्थक थी। लेकिन अब निहत्थे लोगों की राजनीति को आकार देना था। छत्रपति शिवाजी ने अपने सैनिकों के बल पर जो राजनीतिक उखाड़-पछाड़ की और विशेष परिस्थितियों में विशिष्ट दाँव-पेंच चलाये, लोकमान्य तिलक को भी नये सन्दर्भों में, नये रूप में उन्हें कारगर बनाना था। जनशक्ति पर आधारित राजनीति की नींव डालनी थी—बल्कि इसकी नींव वे डाल भी चुके थे।

सूरत काँग्रेस चौपट हो जाने के बाद, उन्होंने चौतरफा धावा बोलना शुरू किया। अपनी एक नयी पार्टी बनाकर उन्होंने उसका एक घोषणा-पत्र बनाया और हर प्रान्त में तथा गाँव-गाँव में उसका जोरदार प्रचार-प्रसार शुरू कर दिया। अरविन्द घोष को उन्होंने पुणे बुलाया और उनके व्याख्यान करवाये। शिवरामपन्त परांजपे, दादासाहब खापर्डे, गंगाधरराव देशपाण्डे आदि लोगों ने अपने-अपने इलाकों में जोरदार काम शुरू कर दिया और मुस्तैदी से उसमें जुट गये।

पैसा-निधि की काँच फैक्टरी, महाराष्ट्र-विद्या-प्रसारक-मण्डल का राष्ट्रीय स्कूल आदि संस्थाएँ तो थीं ही, उनके काम में मुस्तैदी लाने का प्रयास किया जाने लगा।

लोकमान्य तिलक अच्छी तरह से जानते थे कि बम्बई एक अत्यन्त प्रभावी और महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। बम्बई में पैसा था, कर्तृत्ववान उम्दा लोग थे और जुझारू कामगार वर्ग भी था। बम्बई में शुरू से ही तिलक के आदमी थे। वे अपने तईं काम भी कर